National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 1; January 2017; Page No. 29-30

हिंदी साहित्य में लोकजीवन की झलक

प्रमिला देवी

सहायक प्रवक्ता, कन्या महाविद्यालय, खरखौदा, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

साहित्य, मानव समाज और जीवन की भावनात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। इसलिए उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश, लोकजीवन और परम्पराओं का बहुत महत्त्व है। साहित्य का चाहे भौतिक उपयोग भले न हो, वह हमारी मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति चाहे न करे किंतु मनुष्य के लिए उसका भावनात्मक और संवेदनात्मक महत्त्व अवश्य है। साहित्य ऐसे मानव जगत के लिए जरूरत और आंकलन का विषय है जो समाज को वर्तमान से उठाकर भविष्य के लिए आधार बनता है तथा हमारे लोक जीवन, संस्कृति और सम्मान की रक्षा करता है। साहित्य मनुष्य की संघर्षशील आंतरिक वेदना है। जो भी साहित्य आज तक लोकप्रिय हुआ है चाहे वह आदिकालीन साहित्य हो, भक्तिकालीन अथवा आधुनिककालीन अपनी परम्परा और लोक जीवन से जुड़ा हुआ है। वास्तव में साहित्य का विस्तार लोकजीवन, लोक संस्कृति और लोक चेतना की परम्परा से ही संभावित है, यह निःसंदेह कहा जा सकता है।

साहित्य अपनी विशेषताओं तथा स्वरूपों में भिन्नता के कारण दो रूपों में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है– प्रथम शिष्ट साहित्य और द्वितीय लोक–साहित्य। लोक शिष्ट साहित्य के केन्द्र में व्यक्ति होता है जिसमें व्यक्ति विशेष की छाप परिलक्षित होती है और लोक साहित्य के केंद्र में समुद्र होता है जो समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि रचना उस व्यक्ति की न होकर संपूर्ण समूह की होती है और समूह का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

लोक का अर्थ यदि 'ग्राम' निकाला जाता है तो उसका अर्थ संकुचित दायरे में सिमट जाता है। लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं अपितु नगरों और गांवों में फैली हुई समूची जनता है। ये लोग सरल एवं अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। ''लोक–साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य जनसमूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी समाहित रहती है जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्ब रहता है।''[1]

लोक साहित्य में लोक संस्कृति, लोक जीवन, लोक व्यवहार, लोक गायन और लोकाचार का समग्र प्रस्तुतीकरण प्रगट होता है। अनिल सिन्हा के शब्दों में – ''लोक पूरी जातीय और मानवीय चेतना का सकारात्मक व सांस्कृतिक विकास का ठोस दृश्य व्याकरण है।[2]

फास्टर ने कहा है कि ''लोक संस्कृति को जीवन की एक ऐसी सामान्य विधि के रूप में समझा जा सकता है जो एक क्षेत्र विशेष के बहुत से गांवों, कस्बों तथा शहरों के कुछ या सभी व्यक्तियों की विशेषता के रूप में स्पष्ट होती है तथा लोक समाज के व्यक्तियों का एक संगठित समूह है जो एक लोक संस्कृति से बंधा होता है।''[3]

हिंदी में लोक साहित्य का प्रभाव:

हिंदी में सबसे पहला प्रयास श्री मन्नन द्विवेदी का था जिन्होनें सरवरिया नाम गोरखपुर जिसके गीतों का एक छोटा सा संग्रह सन् 1913 में प्रकाशित किया। इसके पश्चात संतराम के प्रयासों से प्रेरित होकर स्व. पंडित रामनरेश त्रिपाठी इस क्षेत्र में आए और उन्होंनें बड़ी लगन से गांव–गांव घूमकर बहुत से गीत एकत्रित किए। कविता कौमुदी का पांचवा भाग जिसमें प्रायः ग्राम गीतों का ही संकलन है। हमारा ग्राम साहित्य और मारवाड़ी गीत संग्रह ये तीन पुस्तकें इस क्षेत्र में त्रिपाठी जी ने हिंदी को भेंट कीं। सन् 1942 के बाद से लोक–साहित्य के क्षेत्र में काफी अच्छा कार्य हुआ है। एक नई जागरूकता उत्पन्न हुई और श्री राहुल सांकृत्यायन, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री कृष्णानंद गुप्त, डॉ. सत्येंद्र जैसे विद्वान लोक साहित्य शोध और संकलन में जुटे। अनेक शोध ग्रंथ निकलते गए, अनेक पत्र–पत्रिकाओं में हिंदी लोक वार्ता संबंधी लेख निकलने लगे और अनेक जनपदीय संस्थाओं की भी स्थापना हुई। इन संस्थाओं में कुछ उल्लेखनीय है ब्रज साहित्य मंडल गढवाली साहित्य परिषद लोकवार्ता साहित्य परिषद (बुंदेलखण्ड) भोजपुरी लोक साहित्य परिषद मालवा लोक साहित्य परिषद इत्यादि।

लोक साहित्य का सामाजिक महत्त्व :

लोक साहित्य के निर्माण में समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। लोक साहित्य किसी भी समाज के वास्तविक एवं यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करता है। जिसको माध्यम से समाज की और समाज के लोगों की परंपराएं, मानवीय भावनाएं, रीति–नीति, विश्वास, आश–आकांशा, कला की झलक मिलती है। लोक साहित्य मे जन जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन प्राप्त होता है। उतना अन्यत्र नहीं। किसी समाज में होने वाले सामाजिक कार्यो, व्यवहारों परम्पराओं, प्रचलित प्रथाओं, विश्वासों आदि का जीवन्त चित्र हमें लोक साहित्य में ही प्राप्त होता हो सकता है। मध्य प्रदेश की करमा जाति में प्रचलित एक लोकगीत का भाव यह है कि यदि तुम मेरे जीवन की कथा जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो। यह तथ्य न केवल भारतीय संदर्भ में बल्कि सभी राष्ट्रों के संदर्भ में युक्तियुक्त मालूम होता है। भारत के हर राज्य और प्रायः हर स्थान पर हर भाषा के लोक गीतों में सास को अत्यंत निर्दयी माना गया है। सास भले ही कितनी सीधी सादी हो लेकिन बहु लड़े बिना नहीं रह सकती और करील की लकड़ी भले ही कितनी गीली हो, जरूर जल उठेगी। लोक गीतों में पुत्री के विवाह के अवसर पर विदाई की बेला में माता का प्रेम पारावार हिलौरे मारता हुआ दिखाई देता है कहीं छोटे भाई–बहन बिलख रहे हैं। कहीं माता, पिता के ऑसुओं की धारा का तो कहना ही क्या ? ननद, भाभी की पारम्परिक कटुता का भी संकेत है –

''अम्मा के रोये नदी नाले बहत हैं, बाबुल के रोये सरवर ताल रे।
भैया के रोये मेरी छाती फटत है, भाभी को जियरा कठोर रे।''

डॉ. अम्बा प्रसाद 'सुमन' जिन्होंने लोक की आत्मा और उसके महत्त्व को जानकर कहा है–''लोक गीत तो मानव समाज के अनेक संस्कारों के लिए वैदिक मंत्रों का कार्य करते हैं। एक बार बिना वेद

मंत्रों के लोक–जीवन से संस्कार पूर्ण हो सकते हैं किंतु लोकाचार को बिना लोक कथाओं एवं लोक गीतों के पूर्ण नहीं माना जा सकता। अनेक अर्द्ध विकसित जातियों में तो विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण संस्कार को लोक गीतों के गायन के साथ ही भांवरे डालकर पूर्ण किया जाता है। किस समय, किस जाति या देश के निवासियों का क्या सामाजिक आचरण रहा होगा। इसका पता देने का कार्य लोक साहित्य से अधिक कौन कर सकता है ? क्योंकि लोक–साहित्य और समाज का संबंध ही इतना घनिष्ट होता है।'' राहुल सांकृत्यायन के अनुसार कबीर, सूर जी की रचनाओं में लोक तत्वों का बहुतायत प्रयोग है। तुलसी ने लोक संस्कृति के तत्वों को कुछ संस्कृत तथा परिष्कृत रूप में ग्रहण किया है। राहुल जी ने अपनी तत्वभेदिनी प्रतिभा के द्वारा बहुत पहले से ही लोक गीतों और लोक साहित्य का मूल्य समझ लिया था। रेणु और प्रेमचंद की रचनाओं में मैथिली और भोजपुरी सभ्यता और संस्कृति के लोकतत्व का गहरा असर है। राहुल जी लोक–साहित्य का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन किए जाने के हिमायती थे। हिंदी साहित्य में उन्होंनें वैज्ञानिक तरीके से कार्य किया। वे जनगीतों को राग रागनियों का उद्‌गम मानते हैं। दूसरा लोक–साहित्य के संग्रह का वैज्ञानिक अध्ययन को उन्होंनें स्वीकार किया है।

अतः कह सकते हैं कि लोक साहित्य अमर है – जब तक संसार है उसमें मनुष्य समुदाय की उपस्थिति है तब तक लोक–साहित्य का नाता अटूट है। लोक संस्कृति और लोक जीवन राष्ट्र की रीढ है। इन्हें ओझल करने से राष्ट्र का स्वरूप ही डगमगा जाएगा। इसके सांस्कृतिक महत्त्व के साथ–साथ सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, नैतिक, आर्थिक एवं सहित्यिक महत्त्व को भी परखा गया। ''किसी भी साहित्य का उत्सव ग्राम गीतों में ही व्याप्त है। भिन्न–भिन्न प्रांतों के स्थानीय ग्राम–गीतों के जो संस्कार गीत होते हैं। जो अलग अलग अवसर के प्रसंगों पर आधारित होते हैं, वस्तुतः सामान्य लोक जीवन की संस्कृति के दिग्दर्शन हैं। इनमें न तो अनावश्यक कल्पना की उड़ान होती है और किसी दुर्बोध परिकल्पना का संस्पर्श। लोकगीतों के प्रतिपाद्य हैं – चक्की और चरखे का गीत, ऋतु संबंधी चित्रणों से गुम्फित गीत की स्वर लहरी, खेती और फसलों के उद्‌गीत, मेले, जन्मोत्सव, छठी, व्रत–त्यौहार, कोहबर, गाली, प्रभाती, होली, चैती सावनी, दुर्गा–शंकर, देवी–देवता, देवर–भाभी और ननद, हंसी मजाक, जीजा साली, दोंगा–गौना और शादी के गीत आदि अपने अपने रीति–रिवाजों एवं परम्परागत अनुष्ठानों के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रांतों में अवसरानुकूल गीतों की भरमार है। बोलियां एवं भाषाएं भी भिन्न भिन्न हैं। जैसे भोजपुरी, अवधी, मैथिली, अंगिका, मगही, नगपुरिया, छतीसगढ़ी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, तेलुगू, कन्नड़, बुन्देलखंडी आदि अनेकानेक स्वर आज भी गांव गांव में ही क्यों शहरों और नगरों में अनुगूंज बनकर प्रतिध्वनित होते हैं।'' [5] ''लोक–साहित्य में किसी देश या जाति की हजारों वर्ष की परम्परा, राष्ट्र के दीर्घ जीवन में अनेक उतार चढ़ाव और सबसे ऊपर उसकी मूलभावधारा और अंतरात्मा की झांकी मिलती है। लोक सहित्य किसी भी देश की मूल संस्कृति और सहित्यिक साधना की रीढ़ है। लोक साहित्य वस्तुत चलित स्मृति साहित्य का खरापन बाह्य आडम्बर से बचकर चलता है। मिथ्या अलंकरण उसे एक ऑख नहीं भाते। सहजता ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता होती है।'' [6]

इस प्रकार यह जगप्रसिद्‌ध है कि आज भी लोक–साहित्य के प्रति लोगों की रूचि बनी हुई है और इस लोक संस्कृति की झलक समय–समय पर हमें हिंदी साहित्य में देखने को मिलती है। हिंदी के प्रसिद्‌ध साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अपने युगीन परिवेश को सजीवता से प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश, सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 682।
2. मड़ई पत्रिका (वर्ष 2001) लोक नाट्य 'नाच' और उसकी संभावनाएं, अनिल सिन्हा, पृ. 117।
3. डॉ. शकुंतला – लोक साहित्य का अध्ययन, प1. 84।
4. लोक साहित्य और लोक संस्कृति, डॉ. रामनिवास शर्मा।
5. मड़ई पत्रिका (1999) संपादक–डॉ. कालीचरण यादव, पृ. 72-73।
6. हिंदी साहित्य पर लोक–साहित्य का प्रभाव, आलोचना, अंक–6, देवेन्द्र सत्यार्थी।